राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा

ज्ञानमीमांसीय विवेचन : II

रोहित धनकर से राजेश एवं वीरेन्द्र की बातचीत

साक्षात्कार की इस कड़ी में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के प्रभावों, उपलब्धियों के साथ इस दस्तावेज पर शिक्षा जगत में हुई आलोचनाओं पर चर्चा की गई है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 एवं गतिविधि आधारित शिक्षण के संबंध तथा इस दस्तावेज के अध्यापक प्रशिक्षणों के लिए निहितार्थों पर भी विचार किया गया है।

राजेश : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 को आए लगभग 6 साल हो चुके हैं। इस दौरान आप इसके सकारात्मक प्रभावों और उपलब्धियों को कैसे देखते हैं और कैसे आंकते हैं?

रोहित : दस्तावेजों की उपलब्धियां वैचारिक और सैद्धान्तिक होती हैं। इसके लिए 6 साल इंतजार करने की जरूरत नहीं होती। जिस दिन इस दस्तावेज का अन्तिम प्रारूप बना और छपने के लिए गया, उस दिन कुछ उपलब्धियां हो चुकी थीं। हमने बात की है कि यह दस्तावेज शिक्षणशास्त्र, ज्ञान के विचार और लोकतंत्र में समानता को केन्द्र में रखता है। यह उपलब्धि तो उसी वक्त हो गई थी। बाकी उपलब्धियां तो किसी दस्तावेज की अकेले नहीं हो सकतीं। लोग उसे कैसे काम में लेते हैं, कितनी गंभीरता से उस पर काम करते हैं; इसके आधार पर ही सब कुछ होता है। अभी तक इंसानों ने ऐसी विधियां ईजाद नहीं की हैं कि ऐसा दस्तावेज बना सकें जो खुद को लागू कर ले। जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन बात और होगी। भारत में इस वक्त शिक्षा को लेकर जो वातावरण बना है, उसे इसकी एक उपलब्धि कहा जा सकता है।

मुझे लगता है कि इस दस्तावेज पर पहले के दोनों दस्तावेजों के बजाय ज्यादा बहस हुई है। 2000 के दस्तावेज पर भी काफी बहस हुई थी लेकिन वह लगभग पूरी तरह से नकारात्मक बहस थी जिसमें एक खास तरह के विचार पर दो धड़े बन गए थे। इस दस्तावेज पर ज्यादा सृजनात्मक बहस स्कूल के स्वरूप, बच्चे के सीखने और ज्ञान के स्वरूप पर हुई है। शुरू में इस पर जो बहस हुई उसमें भी नकारात्मक बन जाने का आयाम था। शुरू में कुछ लोगों ने बिना ठीक से पढ़े-समझे और इसकी व्याख्या किए बगैर जो सवाल उठाए थे, उससे लग रहा था कि यह भी दो धड़ों में बंटी हुई नकारात्मक बहस बन सकती है। लेकिन उस पर जिस तरह के जवाब आए और लोगों ने बातचीत की, उससे एक तो ज्यादा संतुलित ढंग से विचार हुआ और दूसरे इस बहस में सिर्फ इसके निर्माण में जुड़े लोगों ने ही भाग नहीं लिया बल्कि इसमें वे लोग भी शामिल हो गए जो किसी भी तरह इससे जुड़े हुए नहीं थे। इसलिए धड़े बंदी से बच गए। मुझे लगता है कि इस बहस के माध्यम से भारतीय लोगों के मन में पाठ्यचर्या

दस्तावेज के महत्त्व को रेखांकित करने वाली कुछ चीजें हुई हैं। यह शिक्षा के लिए अच्छी बात है। सबको पहले भी पता था कि शिक्षा की जरूरत है लेकिन शिक्षा के अंदर क्या है, उस पर भी सोचना लाजमी है, इस दस्तावेज पर हुई बहस से यह बात रेखांकित हुई है। दूसरे, कुछ दिन पहले कृष्ण कुमार जी से बात हुई तो वे बता रहे थे कि पुराने पाठ्यचर्या दस्तावेजों की हजार से नीचे-नीचे प्रतियां छपती थीं और वे भी कहीं नहीं जाती थीं, एनसीईआरटी में ही पड़ी रहती थीं। इस दस्तावेज की करीब आठ हजार प्रतियां बिक चुकी हैं और अभी भी मांग आ रही है। मुझे लगता है कि इस बहस का एक नतीजा यह निकला है कि स्कूलों में शिक्षकों के हाथ में यह दस्तावेज पहले वाले दस्तावेजों से कहीं ज्यादा पहुंचा है।

रोहित धनकर

जाने-माने शिक्षाविद् एवं दिगन्तर के मानद सचिव। आजकल अजीमप्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर हैं।

राजेश

ससैक्स यूनिवर्सिटी से फोर्ड फैलोशिप के तहत शिक्षा एवं विकास में स्नातकोत्तर। करीब 9 वर्षों से स्वंयसेवी संगठनों में कार्यरत हैं। वर्तमान में अजीमप्रेमजी फाउण्डेशन में काम कर रहे हैं।

वीरेन्द्र

दिगन्तर द्वारा संचालित क्वालिटी एज्युकेशन प्रोग्राम, बारां में समन्वयक के रूप कार्य किया है। वर्तमान में अजीमप्रेमजी फाउण्डेशन, जयपुर में कार्यरत हैं।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एक से अधिक राज्यों ने अपने पाठ्यचर्या दस्तावेज बनाए और उनमें इस सामग्री का उपयोग हुआ है। यह थोड़ी मुश्किल चीज है और दुर्भाग्य की बात है कि हमारे राज्यों में शिक्षा पर काम करने वाले इतने समर्थ दल नहीं हैं जो अपने ढंग से दस्तावेज बना सकें और पाठ्यचर्या की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि एवं व्यवहारिक नतीजों को समझ सकें। यह किसी भी राज्य की आलोचना नहीं है। इसलिए वे जब अपने पाठ्यचर्या दस्तावेज बनाते हैं तो थोड़े पिटे-पिटाए से, दूसरी जगह से सामग्री लिए हुए पैच वर्क जैसे होते हैं। लेकिन इस दस्तावेज से बेहतर सुसंगत दस्तावेज बनाने में कुछ मदद मिली है। आप कह सकते हैं कि यह दस्तावेज काम आया है। उपलब्धि तो काम करने वालों की होती है लेकिन यह दस्तावेज एक संसाधन के रूप में काम आया है।

केन्द्र की तरफ से तीन-चार महत्त्वपूर्ण कोशिशें हुई हैं जिन्हें देखना चाहिए। मैं एक बार फिर से दोहरा रहा हूं कि यह उपलब्धियां अकेले दस्तावेज की नहीं हो सकतीं। यह जो बहस शुरू हुई थी, चिन्तन शुरू हुआ था, उस चिन्तन में लोगों ने जो भागीदारी की उसकी उपलब्धियां हैं। जब यह दस्तावेज बन रहा था तो लगभग इसके समानान्तर एनसीईआरटी में पाठ्यक्रम निर्माण का काम चल रहा था। उसका कुछ काम इस दस्तावेज के पूरे होने से पहले हो चुका था, लेकिन बाद में उस पाठ्यक्रम को संशोधित करके राष्ट्रीय पाठ्यचर्या से संगत बनाया गया। बाद में किताबें लिखते वक्त वह पाठ्यक्रम उपयोग में आया। मुझे पक्का पता नहीं है, लेकिन जो लोग भारत में शिक्षा के इतिहास को जानते हैं वे बेहतर बता सकते हैं, मुझे लगता है कि यह पूरी कड़ी - पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें और प्राथमिक स्तर पर अलग-अलग विषयों में आकलन कैसे हो इसकी संदर्शिका - शायद हमारे यहां पहली बार बनी है। उसका कितना उपयोग हो रहा है और लोग उसे कितना काम में ले रहे हैं, इसके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। लेकिन एक पाठ्यचर्या दस्तावेज जो सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि देता है, वह कक्षा में कैसे काम आएगा और फिर उसका आकलन कैसे करेंगे, वहां तक की एक पूरी कड़ी सुसंगत विचार के तहत शायद पहली बार पूरी हुई है। यह अपने-आपमें एक महत्त्वपूर्ण बात है।

अगली चीज मुझे लगती है, उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पहलू हैं, वे यह हैं कि इस दस्तावेज में बहुत खुलकर कहा गया है कि शिक्षा परीक्षा के दायरे में बंधी रही है, यह शिक्षा के लिए कोई अच्छी बात नहीं है। सीखने को केन्द्र में रखिए और सीखना हुआ है कि नहीं, परीक्षा इसे जानने का एक तरीका भर है। वह अपने-आपमें उद्देश्य नहीं है। यह बात एक से अधिक तरह से रेखांकित हुई है। दुर्भाग्य से जो बात रेखांकित हुई है, वह कुछ ऐसी दिशाओं में भी निकल गई है जिसकी समस्याएं हैं और विरोधाभास पैदा करती है। जैसे, एक नतीजा यह निकाल लिया गया कि अब आठवीं तक परीक्षा की कतई जरूरत नहीं है और इसके बाद दसवीं तक भी जरूरत नहीं है। इस बात के दोनों पक्ष हैं। यह एक अच्छा

सिद्धान्त है और सही भी है, साथ ही एक खतरनाक सिद्धान्त भी है। यह अच्छा सिद्धान्त और सही बात तब बनती है जब प्रत्येक विद्यालय यह जानता हो कि प्रत्येक बच्चे ने कितना सीखा है, और इसका आकलन बहुत जरूरी है। आकलन को सचमुच शिक्षण विधि के हिस्से के रूप में देखा जाता हो। जब तक बच्चों ने निश्चित स्तर तक की चीजें नहीं सीखी हैं तब तक उनको विभिन्न तरीकों से समझाने की कोशिश की जाए, न कि अगली कक्षा में भेजते रहें। यदि स्कूल यह जानता है तब तो पास-फेल नहीं करना, परीक्षा न लेना बहुत अच्छी बात है। लेकिन इसकी तैयारी न स्कूल में हुई है और न शिक्षा तंत्र में और न ही शिक्षक के मन में; उस वक्त यदि आप कहते हैं कि परीक्षा की जरूरत नहीं है तो यह चिन्ता का विषय भी हो सकता है। कम से कम, इस वक्त मुझे ऐसा लगता है कि हमने वह तैयारी पूरी नहीं की है। जो लोग सामाजिक प्रक्रियाओं को समझते हैं और समाजशास्त्र के ज्ञाता हैं, वे इसे दूसरे अंदाज में भी देख सकते हैं। वे कह सकते हैं कि जब आप कोई चीज शुरू करते हैं और जब समाज में वह शुरू होती है, तो समाज में उसकी समस्याएं उजागर होती हैं और तब वह परिपक्व होती है। हो सकता है कि ऐसा हो, लेकिन एक शिक्षक के नाते मुझे यह बहुत चिन्ताजनक स्थिति लगती है कि जब यह कहा जाता है कि बच्चों की किसी तरह की परीक्षा नहीं होगी, वे अपने आप अगली कक्षा में चले जाएंगे। हमारे स्कूलों में काम करने की संस्कृति को देखते हुए जिसमें बच्चों और शिक्षकों की उपस्थिति और काम पूरा करना जरूरी नहीं है, कहीं ऐसा न हो जैसा प्रगतिशील शिक्षा के दौर में इंग्लैण्ड और अमेरिका में हुआ था। वहां स्कूलों से 15-16 साल के निरक्षर बच्चे निकलते थे और बाद में उस पर प्रतिक्रिया हुई। कहीं ऐसा न हो कि हम भी बहुत सारे बच्चों को निरक्षर निकालकर फिर प्रतिक्रिया में जाएं।

लेकिन आपने मुझसे कठिनाइयां नहीं उपलब्धियां पूछी हैं, इस पर मैं दूसरी तरफ ले आऊं तो परीक्षा के शिकंजे का थोड़ा ढीला करने में यह दस्तावेज कामयाब रहा है। इसमें सतत और समग्र मूल्यांकन की जो बात कही गई है, उसके ऊपर पूरे देश में चर्चा हो रही है और उसके लिए विभिन्न प्रकार के तरीके निकालने की कोशिश हो रही है। इसका मतलब है कि इसको व्यवहार में लाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। यह अच्छी बात है। दुर्भाग्य की बात यह है कि अभी तक जितनी भी कोशिशें हुई हैं और खासकर सीबीएसई के द्वारा, वे बिना इस दस्तावेज को समझे की गई हैं। मेरा मानना है कि वह सतत और समग्र मूल्यांकन है ही नहीं। वह एक ही परीक्षा के छोटे-छोटे टुकड़े करके उन्हें लगातार करने का तरीका है। वह बच्चों पर दबाव को घटाने के बजाय बढ़ाएगा। पहले बच्चे छः महीने में एक बार दबाव में आते थे और डेढ़-दो महीने बहुत दबाव और तनाव में रहते थे, अब आपने उस तनाव को पूरे साल में फैला दिया है। यह बिना समझे किया जा रहा है। हमारे यहां एक बड़ी दिक्कत यह है कि जो लोग क्रियान्वयन करते हैं, वे नाम तो वही लेते रहते हैं लेकिन क्रियान्वित अपने ज्ञान के अनुसार ही करते हैं और बहुत बार तो कुछ और ही क्रियान्वित कर देते हैं। सीबीएसई इस मामले में बहुत प्रसिद्ध है। वे अपना ही शिक्षाशास्त्र क्रियान्वित करते हैं, हालांकि नाम वही लेते रहेंगे जो बाकी दुनिया लेती है। दूसरे, मुझे यह भी लगता है कि प्रशिक्षणों में, खासकर सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षणों में, इस दस्तावेज की बात होने लगी है। आप यह कह सकते हैं कि बहुत बड़ी शैक्षिक उपलब्धियां बच्चों के सीखने के संदर्भ में नहीं भी हुई हैं तो भी परीक्षा को लेकर, शिक्षणशास्त्र, शिक्षा के उद्देश्यों, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया और आकलन को लेकर जागरूकता फैलाने में इस दस्तावेज का उपयोग एक उपकरण के रूप में काफी हुआ है।

वीरेन्द्र : आपने अभी इस दस्तावेज के इस्तेमाल के बारे में बताया।

भूल सुधार

इस साक्षात्कार की पहली कड़ी (शिक्षा-विमर्श, नवम्बर-दिसम्बर, 2012) के पृष्ठ 6 पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के निर्माण के लिए बनी 35 सदस्यीय संचालन समिति में एनसीईआरटी के सहभागी सदस्यों की संख्या भूलवश 5-6 छप गई थी। वास्तव में संचालन समिति में एनसीईआरटी के सहभागी सदस्यों की संख्या 11 है। इस त्रुटि के लिए हमें खेद है।

संपादक

लेकिन पिछले समय में शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण करते हुए लोग बार-बार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को गतिविधि आधारित शिक्षण (एबीएल) के बराबर रख रहे थे। वे इन दोनों को एक मानकर चल रहे हैं। क्या सच में यह दोनों एक हैं?

रोहित : यह व्याख्या का मसला है। अलग-अलग लोग इसे अलग-अलग अंदाज में देखेंगे। मैं जिस तरह गतिविधि आधारित शिक्षण (एबीएल) को देखता हूं, हो सकता है दूसरे लोग इसे दूसरे ढंग से देखें, लेकिन इस वक्त यह सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि आप यह कह सकते हैं कि इस समय तंत्र के लिए सबसे ज्यादा सराहनीय और सबसे प्यारा विचार एबीएल है। क्योंकि यह राष्ट्रीय दस्तावेज है और इस पर केब की मुहर लगी हुई है इसलिए जो भी विचार अपने-आपको बहुत प्रचारित करना चाहता है उसे ऊपरी तौर पर कहना पड़ेगा कि मुहर लगा हुआ दस्तावेज और हम एक ही बात कह रहे हैं। कुछ हद तक ऐसा है भी।

लेकिन यदि हम इस पर विस्तार से बात करें तो दो-तीन चीजें देखनी होंगी। मैं एबीएल के बारे में क्या सोचता हूं पहले उस पर बात करनी पड़ेगी, तब इसका जवाब दिया जा सकता है। एबीएल के शायद एक से अधिक स्वरूप हैं। एक स्वरूप जिसका शायद सबसे ज्यादा प्रचार हुआ है, मैं उसकी बात करूंगा।

एबीएल के इतिहास के बारे में भी लोग जितना जानते हैं उसमें एक बहुत छोटी-सी बात है, जिसके बारे में लोगों को पता नहीं है। मूलतः इस सीढ़ी वाली विधि का विचार डेविड ओसब्रो के नीलबाग स्कूल में पैदा हुआ था, जहां मैंने प्रशिक्षण लिया था। डेविड मानते थे कि बच्चे किसी सामग्री के तहत अपने आप सीखें, उस सामग्री में ही बच्चों को रास्ता भी बताया गया हो, वे कुछ गतिविधियां करते हुए सीखें और हर स्तर पर एक से अधिक गतिविधियां हों। उन दिनों इस पर काम चल रहा था। लेकिन डेविड की एक स्पष्ट मान्यता थी कि बच्चे के सीखने में दूसरे बच्चों के साथ बातचीत करना और शिक्षक के साथ अन्तःक्रिया बहुत लाजमी है। इसलिए आप जो भी सामग्री बनाएं, जैसी भी सामग्री बनाएं वह कितनी भी व्यवस्थित हो और बच्चे अपने आप सीखें यह बहुत अच्छी बात है। क्योंकि उस स्कूल में बच्चे खुद सीखें इस पर बहुत बल था। लेकिन दो चीजों का सतत रूप से बहुत ध्यान रखा जाता था। एक चीज यह थी कि शिक्षक के साथ अन्तःक्रिया होनी चाहिए। आप जितनी चीजें सीख रहे हैं, शिक्षक उनके विभिन्न आयाम खोलता है और उसे बहुत-सी चीजों से जोड़ता है। आप कितनी भी व्यवस्थित सामग्री बना लें वह तीन-चार-पांच गतिविधियां दे देगी। उस बच्चे के वातावरण और दिमाग में उस वक्त जो चल रहा है, वह विकास के जिस चरण पर है, उसके व्यक्तिगत इतिहास की जो चीजें हैं, उनसे उन चीजों को जोड़ने का काम एक प्रबुद्ध और स्नेहशील शिक्षक ही कर सकता है। कोई भी विधि जो शिक्षक को छोड़कर आगे बढ़ती है, वह वहां स्वीकार्य नहीं थी। अभी मैं एबीएल की बात नहीं कर रहा हूं। मैं डेविड के स्कूल की बात कर रहा हूं, जहां यह विचार चल रहा था।

दूसरे, यह मानकर चला जा रहा था कि आप कुछ अभ्यास पहले से तय करके, संजो के रख सकते हैं और बच्चे उन अभ्यासों को कर भी सकते हैं। लेकिन वे अभ्यास कभी भी पूर्ण नहीं होते। उसमें लगातार कुछ चीजें जुड़ती रहेंगी। तीसरे, बच्चे का सीखना एकरेखीय नहीं होता। उसमें बहुत सारी जगह और तत्व निकलते हैं। कभी किसी चीज को छोड़ दिया और कभी दूसरी दिशा में निकल गए। फिर कुछ दिन बाद वापस इस पर आ गए। ऐसे खूब सारे उदाहरण डेविड के स्कूल में थे और मैंने जब 15 वर्ष तक पढ़ाया तो मेरे स्कूल में भी ऐसे बहुत से उदाहरण थे। उदाहरण के लिए, एक बच्चा गणित में बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है और एक जगह आकर गणित में उसकी रुचि थोड़ी कम हो गई और वह भाषा में, हिन्दी पर, बहुत तेजी से काम करने लगा। आपको ऐसा लग सकता है कि बहुत गड़बड़ हो रहा है और बच्चा गणित में बहुत पिछड़ने लगा लेकिन हो सकता है अगले वर्ष बच्चा फिर से ठीक करने लगे। यह जो गति की असमानता है और वर्तुल एवं सर्पिल गतियां हैं, स्कूल में इन पर बहुत संवेदनशील रहने की जरूरत होती है। इन सभी मान्यताओं पर

जब सामग्री बन रही थी और कुछ शिक्षक स्व-शिक्षण सामग्री बना रहे थे, तब इन पर लगातार बातचीत होती थी।

चौथी चीज भी है जिसका मैं जिक्र कर दूं, जो सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा है। आप अव्यवस्थित दुनिया में से अवधारणाएं निकालकर खुद उसको व्यवस्थित करें। यह अच्छे शिक्षण की प्रक्रिया का हिस्सा है। यदि सब कुछ बहुत साफ-सुथरा और थाली में परोसकर दिया जा रहा है तो आप सीखने के ऐसे वातावरण का निर्माण कर रहे हैं, जो दुनिया में ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाओं से मेल नहीं खाता और आगे बाधा बनता है। वहां दो शिक्षक इस सामग्री पर काम कर रहे थे, उषा और नरसिम्हन जो पति-पत्नी थे और ऋषिवेली के रूरल सेन्टर में काम करते थे। यह सारी बहसें वहां होती रहती थीं और वहां ऐसी सामग्री बनाने की कोशिश हो रही थी जो इन चारों सिद्धान्तों - शिक्षक के साथ अन्तःक्रिया, किताब और अन्य माध्यमों से खुद व्याख्या करने की संभावनाएं यानी सारी व्याख्याएं करके नहीं दी जाएं, सीखना एकरेखीय नहीं हो जाए, बच्चों की दूसरे बच्चों और शिक्षकों के साथ बातचीत और बच्चों को उनके संदर्भ से सृजनात्मक तरीके से लगातार जोड़ते रहना - पर बात होती रहती थी।

इसलिए वह सामग्री एक खास अंदाज में बन रही थी। लेकिन आप बातचीत को तो सामग्री में नहीं डाल सकते। सामग्री की संदर्शिका में जरूर लिख सकते हैं। यह दोनों शिक्षक वहां से दूसरी जगह चले गए और यह सामग्री वहीं पड़ी रही। बाद में जो व्यक्ति आए उन्होंने उस सामग्री को देखा। उनको लगा कि यह बहुत जबरदस्त चीज है। उन्होंने अपने ढंग से बहुत ही रचनात्मक तरीके से कुछ बदलाव किए और उसे आगे बढ़ाया। पहले जो सामग्री बनी थी वह तो केवल पहले डेढ़-दो वर्ष की थी। वे उसे प्राथमिक स्तर तक ले गए। लेकिन वे उन चारों बातों को भूल गए जिन पर पहले इतना बल था। अब हमारे स्कूलों में होता क्या है? शिक्षक होते नहीं हैं, इसलिए किसी भी शिक्षा तंत्र को शिक्षक रहित सामग्री और शिक्षक रहित विधि बता दोगे तो वह बहुत पसंद आएगी। बच्चे अपने आप कर लेंगे क्योंकि बच्चों के पास स्कूल में करने के लिए कुछ होता नहीं है, वे बैठे रहते हैं इसलिए ऐसे वातावरण में यदि आप उनके सामने खुद सीखने की सामग्री रख देंगे और कुछ विधियां बता देंगे तो आपको चमत्कृत करने वाले परिणाम तुरंत नजर आएंगे। मुझे ऐसा लगता है कि एबीएल के साथ ऐसा हुआ और फिर लगातार वे परिणाम नजर आते गए।

पहले कर्नाटक के कुछ हिस्सों में छोटी-छोटी जगहों पर प्रयोग हुए फिर पूरे राज्य में इसे ले लिया गया और अब पूरे देश में उसे लिया जा रहा है। मैंने इस पर जितने प्रस्तुतिकरण सुने हैं और जितनी सामग्री पढ़ी और देखी है, कुछ स्कूलों में जाकर बच्चों और शिक्षकों को काम करते हुए भी देखा है, उसमें सीखने का एकरेखीयपन और यांत्रिक ढंग से काम करने की जो बात थी वह एनसीएफ 2005 के ज्ञान और सीखने की परिभाषा में बहुत माकूल नहीं बैठती। मैं ऐसा कुछ नहीं कह रहा हूं कि आप एनसीएफ 2005 के हिसाब से काम करते हुए एबीएल को काम में नहीं ले सकते। आप सामग्री को तो पूरी तरह काम में ले सकते हैं लेकिन आपको एक बहुत ही प्रबुद्ध शिक्षक चाहिए जो पहले बताई गई चार चीजों को लगातार सामग्री के साथ जोड़ता रहे। इसमें सीढ़ी पर अत्यधिक बल सीखने को अधिक एकरेखीय बना देता है। मुझे लगता है कि इस वक्त आधे-अधूरे शिक्षक प्रशिक्षणों और शिक्षणशास्त्र को बिना समझे सामग्री को जिस ढंग से काम में लिया जा रहा है, उससे यह मान्यता बनती जा रही है कि बच्चे अपने आप सीख लेंगे और शिक्षक के साथ अन्तःक्रिया की जरूरत नहीं है। यह बात बहुत दूर तक नहीं जाती।

शिक्षक के नाते मेरे मन में एक वैसी ही चिन्ता है जैसी मैं मूल्यांकन के बारे में बता रहा था। दिक्कत यह है कि शिक्षा में बहुत-सी चीजें ऐसी होती हैं जो तुरंत बहुत अच्छे नतीजे देती हैं लेकिन बाद में आप एक बहुत बड़ी समस्या में फंसते हैं। इसीलिए मुझे लगता है कि पूरी की पूरी शिक्षा तात्कालिक आनुभविक नतीजों

पर नहीं चल सकती। उसके पीछे हमेशा सैद्धान्तिक, दार्शनिक और नैतिक मुद्दे होते हैं। आप जब तक उसकी बात नहीं करेंगे, उस दृष्टि से चीजों को नहीं देखेंगे, विवेचित नहीं करेंगे तब तक आपको इसके बारे में चिन्ता होनी चाहिए।

इसके बारे में मेरी चिन्ता यह है कि इतने बड़े पैमाने पर जब बच्चे इस पद्धति से पढ़कर निकलेंगे, हम नहीं जानते कि उसका क्या असर होगा। यदि बहुत अच्छा होता है तो यह बहुत अच्छी बात है, किसी को क्या एतराज हो सकता है, लेकिन एक चिन्ता यह भी है कि उनको चीजों को एक खास अंदाज में, छोटे टुकड़ों में परोसने, एकरेखीय दिशा में बढ़ने और अपने आसपास की चीजों से बिना सही संबंध बनाए बढ़ने की आदत विकसित हो जाए तो यह चिन्ता की बात है और इसके उदाहरण हैं हमारे पास। इसीलिए मैं ऐसी बात कह रहा हूं। आप कक्षा में करके देख लीजिए, कोई भी शिक्षक इसे करके देख सकता है। यदि बच्चों को गणित में संख्याएं लिखना और आरंभिक जोड़-बाकी करवाएं तो बिना उसके ढांचे और तर्क को समझे वे बहुत तेजी से सिर्फ प्रतीकों के कुशल प्रयोग करना सीख लेते हैं, लेकिन तीसरी कक्षा से आगे उन बच्चों को बहुत गंभीर समस्या आती हैं। इसलिए मेरी चिन्ता यह है कि आठवीं के बाद इन बच्चों के साथ ऐसा नहीं हो जाए, जैसा हमने पूरे देश में फिलहाल गणित को एक यांत्रिक तरीके से सिखाकर कर दिया है। इसका जवाब समय और यदि किसी ने अच्छा अध्ययन किया तो वह देगा।

राजेश : आपकी बातों में आया है कि इस दस्तावेज की कुछ आलोचना हैं। आप उन आलोचनाओं और समीक्षाओं को किस तरह से देखते हैं? कोई एक-दो प्रतिनिधि आलोचनाओं पर आप प्रकाश डालें।

रोहित : इसकी बहुत सारी आलोचनाओं के बारे में मुझे पता नहीं है, जितना पता है उनके आधार पर कुछ बातें कर सकते हैं और अब मैं इस दस्तावेज के बारे में क्या सोचता हूं, इसकी बात भी करेंगे। वैसे तो मैं इसकी ड्राफ्टिंग कमेटी में था, इसलिए उस वक्त क्या सोचता था वह अलग मामला है।

देखिए, इसकी कुछ आलोचनाएं तो अनुपयुक्त हैं। जैसे, एक बात मैंने बहुत जगहों पर पढ़ी है और गोष्ठियों और सेमीनारों में सुनी है कि सैद्धान्तिक रूप से तो यह दस्तावेज बहुत अच्छा है, लेकिन यह करेगा कौन! यह इस दस्तावेज की आलोचना है ही नहीं, यह तो शिक्षा तंत्र की आलोचना है। आप ज्यादा से ज्यादा यह कह रहे हो सकते हैं कि हमारा तंत्र जिस तरह के पाठ्यचर्या दस्तावेज के साथ काम कर सकता है, यह उससे ज्यादा अच्छा है, अतः आपको यह नहीं बनाना चाहिए था! इसलिए मुझे यह आलोचना बहुत उपयुक्त नहीं लगती। हालांकि इसका सामाजिक संदर्भ है लेकिन फिर आप इसे दो अंदाज में देख सकते हैं। एक तो यह कि भारत के शिक्षाविदों को जितना पता था, उन्होंने अपने समस्त ज्ञान को खंगालते हुए और अपनी काबिलियत के अनुसार वे जो सर्वश्रेष्ठ काम करके दे सकते थे उन्होंने वह करके दे दिया। अब तंत्र में जो बाकी लोग हैं, यह उनकी जिम्मेदारी है कि वे अपनी कमर कसें, अपनी क्षमताओं को बढ़ाएं और इसे क्रियान्वित करें। अब आप यह कहें कि हमारा तंत्र तो इतना कमजोर और सड़ा-गला है, इसलिए आप एक कमजोर और सड़ा-गला दस्तावेज बनाकर दे दें, तो कम से कम मुझे यह उपयुक्त आलोचना नहीं लगती।

दूसरी बात इसके बारे में बहुत जोर-शोर से उठी थी कि इसमें शिक्षक की एजेन्सी नहीं है। एजेन्सी का अर्थ है कि शिक्षक जब काम करता है तो बहुत-सी जगह उसे अपने चुनाव करने होते हैं। उसे जो भी काम करने होते हैं, उन्हें वह अपने चिन्तन के अनुसार, अपने ढंग से, अपनी स्वतंत्रता के साथ, अपनी स्वायत्ता कायम रखते हुए कर सके और चीजों को अपने तरीके से व्याख्यायित कर सके। यही शिक्षक की एजेन्सी का मतलब है। यदि इस दस्तावेज के दूसरे अध्याय को कोई भी व्यक्ति ध्यान से पढ़े तो उसे एकदम स्पष्ट हो जाएगा कि यह आलोचना गलत है। वास्तव में यदि कोई नया आदमी इसे पढ़ेगा तो उसे लग सकता है कि कुछ ज्यादा

ही बार कहा जा रहा है। क्योंकि इसमें बार-बार यह कहा जा रहा है कि बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण अपनी परिस्थितियों में ही करता है और वहां शिक्षक ही वह व्यक्ति होता है, जो उसे रास्ते पर डाल सकता है और इसलिए शिक्षक को बहुत रचनात्मक तरीके एवं अपने ढंग से इस सारी चीज की व्यवस्था करनी होगी। यह सिर्फ शिक्षक को स्वतंत्रता देता ही नहीं है बल्कि उसे स्वतंत्र होने के लिए बाध्य करता है। आप निश्चित ही पलटकर कह सकते हैं कि यदि बाध्य करता है तो एजेन्सी पर आक्रमण करता है, लेकिन मैं उस अर्थ में बाध्य करने की बात नहीं कह रहा हूं। यह आलोचना की गई है कि इस दस्तावेज में शिक्षक के लिए जगह नहीं है, शिक्षक के प्रबुद्ध, आत्मचेता, स्वयं निर्णयकर्ता व्यक्ति के रूप में जगह नहीं है। मुझे नहीं लगता कि यह आलोचना सही है।

इसकी तीसरी आलोचना जो कि आंशिक रूप से सही है, मैं अभी उसके बारे में क्या सोचता हूं, इसकी बात भी कर सकते हैं। इस आलोचना को भी हमें संदर्भ में देखना चाहिए। जैसा कि मैंने पहले भी कहा था, हमारे पहले के दस्तावेजों में, ज्ञानशास्त्र या ज्ञानमीमांसा के लिए कोई खास जगह नहीं है और उसकी कोई विवेचना उनमें नहीं पाई जाती। एक तो हम किस तरह की ज्ञानमीमांसा स्वीकार कर रहे हैं इसका वहां स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है और दूसरे ज्ञानमीमांसा और शिक्षणशास्त्र का रिश्ता कायम करना होता है। जब वह उल्लिखित ही नहीं है तो रिश्ता कायम करने की तो बात ही नहीं हो सकती थी। इस दस्तावेज में एक बड़ी छलांग है कि ज्ञानमीमांसा पर चर्चा की गई है।

इस दस्तावेज में किस तरह की ज्ञानमीमांसा को स्वीकार किया गया है, उसका उल्लेख है, उसका विस्तार है और शिक्षणशास्त्र से उसका रिश्ता है। यह एक प्रकार की छलांग है लेकिन जैसा कि मैंने अभी कहा कि उस रिश्ते में तनाव और विरोधाभास है। यह दस्तावेज ज्ञानमीमांसीय और शिक्षणशास्त्रीय विरोधाभासों से मुक्त नहीं है। लेकिन मजेदार बात यह है कि अभी तक किसी ने इसे इतने ध्यान से नहीं पढ़ा है कि उन विरोधाभासों को रेखांकित करके बहस आरंभ कर सके। शुरू में 'सहमत' ने इस पर कुछ बैठकें की थीं जिसमें यह बात उठाई गई थी कि यह दस्तावेज ज्ञान को किस दृष्टि से देखता है। इसके दो बिन्दु उठाए गए थे। इसमें ज्ञान की परिभाषा दी गई है कि ज्ञान अनुभव का व्यवस्थित रूप है। इसे व्यवस्थित करना भाषा के माध्यम से होता है और यह आगे अनुभव को समझने एवं कर्म करने में काम आता है। इससे लोगों को लगा कि यह परिभाषा बहुत उपयुक्त नहीं है। वास्तव में यदि वे दो-चार पैराग्राफ तक आगे पढ़ते तो इसका जवाब दिया जा सकता है। इसमें समस्या नहीं है क्योंकि यहां यह नहीं कहा जा रहा है कि अनुभव ही ज्ञान है। कहा यह जा रहा है कि अनुभव ज्ञान का आधार है। भाषा के माध्यम से आप अनुभव से अवधारणाएं और उनकी संरचनाएं बनाते हैं, यह ज्ञान है। एक हद तक यह आलोचना गड़बड़ थी।

आगे यह बात कही गई थी कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार के ज्ञान का निर्माण कर ले तो क्या वह सारा का सारा उपयुक्त और स्वीकार्य ज्ञान है? यहां फिर वह समस्या, जिसे मैं पहले कह रहा था, शुरू होती है। इस दस्तावेज में वह तनाव है और इस सवाल का जो जवाब दस्तावेज में उपलब्ध है उसकी तरफ ध्यान नहीं जाने देता।

वीरेन्द्र : लेकिन यह दस्तावेज आलोचनात्मक चिन्तन की बात भी करता है...।

रोहित : सवाल यह है कि आप आलोचनात्मक चिन्तन को किस नजरिए से देखते हैं। एक तो आलोचनात्मक चिन्तन इस तरह का हो सकता है जिसे मैं अपने मन में कर रहा हूं। दूसरे, आलोचनात्मक चिन्तन इस प्रकार का हो सकता है जिसे मैं किन्हीं सामाजिक या सामूहिक मानदण्डों के आधार पर कर रहा हूं। क्योंकि यह दस्तावेज बच्चे को केन्द्र में रखने और रचनात्मकतावाद की बात इतनी ज्यादा करता है कि जो दूसरी बात

बड़ी सपाट भाषा में कह दी गई है कि प्रत्येक ज्ञान किसी न किसी प्रकार के आधारों की मांग करता है, जिस पर हम सार्वजनिक बहस या दूसरे लोगों के साथ बात कर सकें। आपको उसे प्रमाणित करना होता है। लेकिन इस दस्तावेज में इसके लिए जितनी जगह है और बच्चे के ज्ञान निर्माण की जितनी जगह है, उसे देखते हुए लोगों का उस पर ध्यान नहीं जाता। आंशिक रूप से आप कह सकते हैं कि यह ठीक है।

दूसरे, मैं जिस तनाव की बात कर रहा था वह इसलिए भी कह रहा था कि रचनात्मकतावाद की खूब बात होती है कि बच्चा अपने आप ज्ञान का निर्माण करता है। बच्चा जो ज्ञान निर्माण करता है उसको कुछ शर्तें पार करनी होंगी, तब हम इस ज्ञान को सामाजिक रूप से काम के ज्ञान या अपनी जिन्दगी में भी आगे बढ़ने के लिए काम के ज्ञान के रूप में देखना शुरू करेंगे। लेकिन इस बात के तुरंत बाद पुरानी वाली बात पर फिर से जोर दे दिया जाता है। ऐसा लगता है कि जैसे दस्तावेज में दो विचार हैं। दोनों कुछ अपने तरीके से अपने पक्ष को पुष्ट करते हुए और दूसरे को एक हद तक तिरोहित करते हुए, बिना एक-दूसरे के साथ व्यस्त किए हुए चल रहे हैं। यह इस दस्तावेज की खामी है लेकिन इस ढंग से किसी ने इसकी आलोचना नहीं की है।

तीसरी आलोचना स्थानीय ज्ञान (लोकल नॉलेज) या बच्चे के परिवेश के ज्ञान को इज्जत से देखने पर हुई थी कि यह अंधविश्वास बढ़ाएगा। मेरे विचार से यह गलत आलोचना है। क्योंकि यह नहीं कहा गया है कि बच्चे के गांव, समाज या परिवेश में जो कुछ माना जाता है उसे ज्यों का त्यों ले आइए, बल्कि उदारहण देकर समझाया गया है कि उसको कक्षा और स्कूल में आने दीजिए, उस पर चर्चा और बहस शुरू करिए और उसे जांचिए। उसे कुछ मानदण्डों के आधार पर जांचिए। यदि आप ऐसा करेंगे तभी जाकर जिस प्रकार के विश्वास लोगों के मन में हैं वे प्रश्नित होंगे। यदि आप शिक्षा को उससे एकदम अलग करके चलेंगे, तो उन्हें कभी प्रश्नित होने का मौका ही नहीं देंगे। सम्मान देने का आशय उसे मान लेना नहीं है। सम्मान देने का आशय है कि आप अपने विचार को जितनी इज्जत के साथ जांचते और उसके पक्ष में तर्क देते हैं, दूसरे को भी उतनी इज्जत के साथ अपने विचार के पक्ष में तर्क देने का मौका दीजिए और उसको भी उतनी ही इज्जत के साथ जांचिए। उसे खारिज मत करिए। मेरे विचार से यह उपयुक्त आलोचना नहीं है।

आरंभ में एक आलोचना यह भी हुई थी कि यह दस्तावेज खुले तौर पर यह नहीं कहता कि 2000 के दस्तावेज में जिस प्रकार की सांप्रदायिकता की भावना आ गई थी, उन भावनाओं को दुरुस्त करने के लिए बनाया गया है। मेरे विचार से यह भी गलत आलोचना थी। वास्तव में इसे कहने की जरूरत नहीं थी। इस पर ड्राफ्टिंग कमेटी में और कई जगह पर अच्छी खासी बहस हुई थी कि राष्ट्रीय दस्तावेजों में कई प्रकार के विचलन और कई तरह की चीजें आ सकती हैं। हमें ऐसा दस्तावेज बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिसके पास एक बहुत मजबूत सैद्धान्तिक आधार हो। ताकि यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज एक राजनैतिक फुटबॉल न बन सके। जो भी उसे राजनैतिक फुटबॉल बनाना चाहे, उसको कुछ बहुत ठोस शिक्षाशास्त्रीय और शिक्षा दर्शन के सिद्धान्तों से टकराना पड़ेगा। किसी के लिए भी यह मुश्किल काम हो जाएगा। हमने यहां कोशिश की है कि बौद्धिक चिन्तन और शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि को इसके केन्द्र में रखें ताकि बिना झंड़े उठाए अपने आप इलाज हो जाए। इसलिए यह आलोचना भी उपयुक्त नहीं थी।

एक और आलोचना मेरे मन में आती है लेकिन मुझे पता नहीं है कि आज के दिन राष्ट्रीय दस्तावेजों में वह लाजमी है क्या। राष्ट्रीय दस्तावेज चाहे वह पाठ्यचर्या दस्तावेज हो या कोई नीतिगत दस्तावेज हो, उसके लिए लाजमी होता है कि वह पूरे राष्ट्र को साथ लेकर चले। किसी भी राष्ट्र में एक से अधिक प्रकार की विचारधाराएं और हित समूह होते हैं और लोकतंत्र में सबको जगह मिलनी चाहिए। यदि सबको जगह मिलती है तो सैद्धान्तिक दृष्टि से संगतता बरकरार रखना किसी दस्तावेज के लिए बहुत मुश्किल होता है। यदि मैं इसका दार्शनिक तरीके से अध्ययन करूं तो इसमें कई जगह खिंचाव और विरोधाभास नजर आ सकते हैं।

लेकिन मैं अब भी तय नहीं कर पा रहा हूं कि इसे कमजोरी मानूं या किसी भी राष्ट्रीय दस्तावेज की लाजमी शर्त के रूप में देखूं। मान लीजिए, शिक्षा या शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में एक से अधिक मत हैं और इसको आप हल नहीं कर पाए हों तो उसकी झलक, दोनों की बात, दस्तावेज में करनी होगी और इसलिए दोनों के विचारों में तनाव नजर आने लगेगा।

कोई आदमी शिक्षाशास्त्र या शिक्षा दर्शन पर बहुत व्यवस्थित बात करे और अपना पर्चा लिखे तो वह जितना सुसंगत हो सकता है, यह दस्तावेज उतना सुसंगत नहीं है। साथ ही किसी राष्ट्रीय दस्तावेज से उस कदर सुसंगत होने की मांग करनी भी चाहिए या नहीं, यह सवाल भी इस दृष्टि से अपने आप उठता है। इस लिहाज से देखें तो मुझे लगता है कि सभी दस्तावेजों में कुछ छूट जाता है, कुछ खामियां रहती हैं और कुछ मजबूतियां होती हैं। फिलहाल मुझे लगता है कि यह काफी अच्छा और सशक्त दस्तावेज है। इसके बावजूद मुझे यह लगता है कि अभी इसे 6 साल हो चुके हैं और एनसीईआरटी को कम से कम दो साल पहले इसकी समीक्षा का काम शुरू कर देना चाहिए था क्योंकि हमारी शिक्षा नीति में यह लिखा हुआ कि हर पांच साल में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की समीक्षा करनी चाहिए। समीक्षा करके चाहे आप किसी भी चीज को न बदलें लेकिन एक बार बहस को दोबारा खोलने की जरूरत होती है। वह समय पहले ही निकल चुका है। मुझे नहीं पता कि एनसीईआरटी और केन्द्र सरकार सो क्यों रहे हैं। कभी समीक्षा की जाएगी तो शायद इन चीजों का इलाज हो।

वीरेन्द्र : हम मानते हैं कि शिक्षकों की जितनी तैयारी होगी उतने ही बेहतर तरीके से वे कक्षा में पढ़ा सकते हैं और पाठ्यचर्या को सही मायने में व्यवहार में ला सकते हैं। शिक्षक प्रशिक्षणों और पूरी अध्यापक शिक्षा के लिए इसके क्या निहितार्थ हैं?

रोहित : देखिए, यदि आप सेवापूर्व की बात कर रहे हैं तो कुछ हद तक एनसीटीई ने प्रयास किए हैं। उसने अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज बनाया है लेकिन मुझे नहीं लगता कि यह दस्तावेज पूरी तरह से उस अपेक्षा के साथ न्याय करता है। 2005 का दस्तावेज एक स्वतंत्र नजरिए वाले जागरूक और समर्थ शिक्षक की मांग करता है। इसके बिना इसे लागू करना बहुत आसान नहीं होगा। कई बार एक शब्द रिफ्लेक्टिव प्रेक्टिशनर काम लिया जाता है। लोग इसको नारे के रूप में तो खूब काम लेते हैं लेकिन किसी भी चीज पर रिफ्लेक्टिव प्रेक्टिशनर होने के लिए दो-तीन चीजों की जरूरत होती है। इसके लिए एक सैद्धान्तिक ढांचा होना चाहिए क्योंकि रिफ्लेक्शन का काम सिद्धान्तों के माध्यम से होता है। आप कितना भी कहिए, रिफ्लेक्शन आपकी अंगुली या घुटने नहीं करते। उसे सिद्धान्तों के आधार पर दिमाग करता है। यदि आपके पास कोई ढांचा नहीं है तो रिफ्लेक्शन नहीं होगा। आप कल्पना कर सकते हैं, कविता कर सकते हैं, बहुत सारी चीजें कर सकते हैं लेकिन रिफ्लेक्शन तो उस कदर नहीं हो पाएगा। दूसरे यह मांग करता है कि आप व्यवहार (प्रैक्टिस) से बहुत गंभीरता से जुड़े हों। अर्थात् आप जो काम कर रहे हैं उसे पूरी सन्नदता से करने की कोशिश करें। तीसरी बात यह है कि आप दोनों के मेल के प्रति बहुत जागरूक रहें। मुझे लगता है कि यह अध्यापक शिक्षा संस्थानों के लिए एक खास प्रकार की पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्र की मांग करता है जिसमें निश्चित ही शिक्षा दर्शन और ज्ञानमीमांसा का पर्याप्त ज्ञान हो। शिक्षा के सामाजिक विश्लेषण का पर्याप्त ज्ञान हो। साथ ही शिक्षणशास्त्र पर जितने भी नजरिए हैं - आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र से लेकर रचनात्मकतावाद का काफी सारा ज्ञान हो। यह तभी हो पाएगा जब शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान शिक्षक-विद्यार्थी को सक्रिय रूप से स्कूल में काम करते हुए इनको आपस में जोड़ने का मौका मिलेगा। दो साल पढ़ाने के बाद स्कूलों में भेजने से यह नहीं होगा। आप पढ़ा रहे हैं उसी वक्त साथ-साथ कुछ काम करना पड़ेगा, यह दिखाने भर के लिए अभ्यास नहीं है, सचमुच में बच्चों को पढ़ाना और उसका विश्लेषण करने से यह चीजें जुड़ेंगी।

मैं एक साथ दो बातें कह रहा हूं। एक तो जितनी सैद्धान्तिक गहराई अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या में है, उसे बढ़ाना होगा और दूसरे उसको व्यवहार से जोड़ने की बेहतर व्यवस्था करनी होगी। तीसरे, आपको ज्यादा अकादमिक रूप से तैयार लोगों को प्रवेश देना होगा। इस वक्त अध्यापक शिक्षा कॉलेजों में अकादमिक रूप से जितने तैयार लोगों को ले लेते हैं वे शायद इस काम को न कर पाएं। अतः इसके लिए बेहतर गुणवत्ता के विद्यार्थी चाहिएं।

इसके अलावा जहां तक सेवाकालीन प्रशिक्षण का सवाल है तो हमारे यहां अभी तक उसका कोई स्वरूप ही नहीं बना है। इसमें तो बहुत काम करने की जरूरत है। हमने सेवाकालीन प्रशिक्षण में कुछ काम किया है। उसमें हमारा नजरिया यह रहा है कि फुटकर विधियां बताने से शिक्षक का नजरिया और क्षमता, दोनों ही विकसित नहीं होतीं। पहले शिक्षक के पास एक सामाजिक और शैक्षिक ढांचा हो जिसमें वह उन फुटकर विधियों की कीमत देख सके। तब जाकर वे फुटकर विधियां काम की होती हैं। यदि सामाजिक और शैक्षिक ढांचा है तो शिक्षक फुटकर विधियां एवं गतिविधियां ईजाद कर सकते हैं। सिर्फ गतिविधियों और फुटकर विधियों के माध्यम से यदि आप यह अपेक्षा करते हैं कि शिक्षा और समाज के बारे में कोई नीति या सिद्धान्त का ढांचा बन जाएगा तो आप गलत समझ रहे हैं, ऐसा नहीं होता। मुझे लगता है कि हमारे देश में अभी सेवाकालीन प्रशिक्षण बहुत ही अविकसित अवस्था में है। लोग उसमें भाषण देते हैं जो अधिकतर या तो वाक्पटुतापूर्ण होते हैं या नैतिक प्रचार होता है। दूसरे, उसमें एक बहुत ही मजबूत तबका है जो गतिविधि करवाता है और यह गतिविधियां न तो आपस में जुड़ती हैं और न ही उनके पीछे का सैद्धान्तिक आधार पता चलता है। क्योंकि गतिविधियों में सबको लगता है कि बहुत आनन्द आ गया और वे लोग बगलें बजाते हुए अपने घर पहुंच जाते हैं, शिक्षा वहीं रहती है। इसलिए दोनों ही काम करने होंगे। इसके बारे में ज्यादा गंभीरता से सोचने की आवश्यकता है। ◆